॥ श्रीरामोजयति ॥

श्रीनारद सूत्र।

ॐ अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

(नवधा) भगति कहौं तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं ॥

ओं सा कस्मै परम प्रेम रूपा ॥ २ ॥

अविरल प्रेम भगति (मुनिपावा)।

ओं अमृत स्वरूपा च ॥ ३ ॥

पूरण राम सु प्रेम पियूषा ॥ राम प्रेम अव अमिय (अघाहू)॥

---

१. अब यहां से भक्ति की व्याख्या करते हैं।

२. परमेश्वर में परम प्रेम को भक्ति कहते हैं।

३. भक्ति अमृत स्वरूपा भी है।

ओं भवतु निश्चय दार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्र रक्षणम् ॥ १२

नित नव राम प्रेम पनपीना ॥ बढ़त धर्म दल मन न मलीना ॥
सम दम संयम नियम उपासा ॥ नखत भरत हिय विमलप्रकासा ॥

ओं अन्यथा पातित्याशंका ॥१३॥

राम रजाय मेटि जग माहीं । देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ॥

ओं लोकोपि तावदेव किन्तु भोजनादि व्यापारस्त्वा शरीरधारणावधि ॥१४॥

अमितबोध निरीह मित भोगी ॥
अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती । सब तजि भजन करौं दिन राती ॥

॥ इति द्वितीय अनुवाक ॥

ओं तल्लक्षणा निवाच्यन्ते नाना मत भेदात् ॥ १५

औरौ जे हरि भगति सुजाना । कहहिंसुनहिंसमुझहिंविधिनाना ॥

---

१२. निश्चय के दृढ़ता के पहिले शास्त्र रक्षण रहे ।

१३. नहीं तो पतित होने का डर है ।

१४. लोक भी तभी तक रहे किन्तु भोजनादि शरीर के बने रहने तक चला करे ।

॥ इति द्वितीय अनुवाक ॥

१५. नाना मत भेद से उस (भक्ति) के लक्षण कहते हैं ।

ओं निरोधस्तु लोकवेदव्यापार सन्यासः ॥ ८ ॥

त्यागहि कर्म शुभाशुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक॥

ओं तस्मै अनन्यता (१) तद्विरोधिषूदासीनता (२) ॥ ९ ॥

(१) स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन कहँ सब तुम तात।
मम मन्दिर तिन के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥

(२) सो सब कर्म धर्म जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परिधानू॥

ओं अन्याश्रयाणां त्यागो अनन्यता ॥ १० ॥

तुमहि छांड़ि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिनके मन माहीं॥

ओं लोकेवेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषू-दासीनता ॥ ११ ॥

राखे राम रजाय रुख, हम सब कर हित होय॥

---

८. लोक वेद के व्यापार के छोड़ने को निरोध कहते हैं।

९. उस में अनन्यता और उस के विरोधियों पर उदासीनता रखने को भी निरोध कहते हैं।

१०. दूसरे आश्रयों के त्याग को अनन्यता कहते हैं।

११. लोक वेद में उसके अनुकूलाचरण को ही, उसके विरोधी पर उदासीनता रखना कहते हैं।

ओं यज्ज्ञानात् (१) मत्तो भवति (२) स्तब्धो भवति (३) आत्मा रामो भवति ॥६॥

(१) करहिं मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेह सुरा सब छाके ॥
शिथिल अंग पग डगमग डोलहिं। विह्वल वचन प्रेम वश बोलहिं ॥
(२) मुनि मग माँझ अचल है बैसा। पुलक शरीर पनसफल जैसा ॥
कोउ कछु कहै न कोऊ कछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूछा ॥
(३) परमानन्द प्रेम रस फूले। वीथिन फिरहुँ मगन मन भूले ॥

॥ इति प्रथम अनुवाक ॥

ओं सा न कामयमाना निरोध रूपात् ॥ ७ ॥

सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।

नान्यास्पृहा रघुपते हृदये स्मदीये, सत्यं वदामि च भवान-खिलान्तरात्मा। भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरांमे, कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च ॥

भजिय राम सब काम बिसारी ॥

---

६. जिसके जानने से मत्त होता है, स्तब्ध होता है, आत्मा राम होता है।

॥ इति प्रथम अनुवाक ॥

७. वह कामना के नहीं है, निरोध रूप होने से।

ओं यल्लब्ध्वा पुमान् (१) सिद्धोभवति (२) अमृती भवति (३) तृप्तो भवति ॥ ४ ॥

(१) साधक नाम जपहिं लय लाये। होंहि सिद्ध अणिमादिक पाये ॥
(२) शुक सनकादि साधु मुनि योगी। नाम प्रताप ब्रह्मसुख भोगी ॥
(३) अब कछु नाथ न चाहिये मोरे। दीन दयाल अनुग्रह तोरे ॥

ओं यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति (१) न शोचति (२) न द्वेष्टि (३) न रमते (४) नोत्साही भवति ॥ ५ ॥

(१) जाहि न चाहिय कबहुं कछु, तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु उर, सो राउर निज गेह ॥
(२) रामप्रसाद सोच नहिं सपने।
(३) निज प्रभु मय देखहिं जगत, का सन करहिं विरोध।
(४) तुम बिनु तात सुहात गृह, जिन्हहिं तिन्हहिं विधि वाम ॥
(५) प्रेम मगन मोहिं कछु न सुहाई।

---

४. जिसे पाकर पुरुष (१) सिद्ध होता है (२) अमृतवाला होता है (३) तृप्त होता है।

५. जिसे पाकर (१) न कुछ चाहता है (२) न शोचता है (३) न द्वेष करता है (४) न रमण करता है (५) और न उत्साही होता है।

तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके ॥ २८ ॥

जाने विनु न होइ परतीती । विना प्रतीति होय नहिं प्रीती ॥
प्रीति विना नहिं भगति दृढ़ाई । जिमि खगेश जल की चिकनाई ॥

अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ॥ २९ ॥

होह न राम प्रेम विनु ज्ञानू । कर्णधार विनु जिमि जलयानू ॥

स्वयम् फल रूपेति ब्रह्मकुमाराः ॥ ३० ॥

बेद पुराण सन्त मत एहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥

(१) राज गृह (२) भोजनादिषु दृष्टत्वात् ॥ ३१ ॥

(१) साधु सुजान सुशील नृपाला । ईश अंश भव परम कृपाला ॥
सुनि सनमानहि सबहि सुवानी । भनित भगति नति गति पहिचानी ॥
(२) भोजन करिय तृप्तहित लागी । जिमि सो असन पचवइ जठरागी ॥
अस हरि भजन सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सुहाई ॥

---

२८. उस भक्ति का ज्ञान साधन है, ऐसा किसी का मत है ।

२९. भक्ति और ज्ञान एक दूसरे के आश्रय है, ऐसा दूसरे का मत है ।

३०. स्वयम् फल रूपा है, यह सनत्कुमारादि का मत है ।

३१. राजगृह और भोजनादि में ऐसाही दिखाई पड़ने से ।

सा तु कर्म ज्ञानेभ्योऽप्यधिकतरा ॥ २५ ॥

जे अस भगति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥
सुनु खगेश हरि भगति विहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥
ते सठ महासिन्धु बिनु तरणी । पैरि पार चाहहिं जड़ करणी ॥

फलरूपत्वात् ॥ २६ ॥

तीर्थाटन साधन समुदाई । योग विराग ज्ञान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म व्रत दाना । संयम दम तप मख व्रत दाना ॥
भूतदया गुरु द्विज सेकवाई । विद्या विनय विवेक बड़ाई ॥
जहँ लगि साधन वेद बखानी । सबकर फल हरि भगति भवानी ॥

(१) ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वात् (२) दैन्य-प्रियत्वात् ॥ २७ ॥

(१) जन अभिमान न राखहिं काऊ । दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ ॥
संसृति मूल शूलप्रद नाना । सकल शोक दायक अभिमाना ॥
तेहि ते करहिं कृपानिधि दूरी । सेवक पर ममता अति रूरी ॥
(२) वन्दौं सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥

---

२५. वह भक्ति ज्ञान और कर्म से भी अधिकतर है ।

२६. फल रूप होने से ।

२७. ईश्वर के अभिमान द्वेषी और दैन्य प्रिय होने से ।

यथा व्रजगोपिकनाम् ॥ २१ ॥

जोह जसोमति हरि हलधर से ।

न तत्रापि माहात्म्य ज्ञान विस्मृतिरपवादः ॥२२

सो महिमा खगेश जिन जानी । तेउ यहि चरण सदा रति मानी ॥
ब्रह्माण्ड निकाया, निर्मित माया, रोम २ प्रति वेद कहै ।
मम उर सो वासी, यह उपहांसी, सुनत धीर मति थिर न रहै ॥
यदपि विरज व्यापक अविनाशी । सब के हृदय निरन्तर वासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । वसतु मनसि मम कानन चारी ॥

तद्विहीनं जाराणामिव ॥ २३ ॥

जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयम् ।
जेहि नमत शिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुणामयं ॥
लम्पट कपटी कुटिल विशेषी । सपनेहु सन्त सभी नहिं देखी ॥
कहँहि ते वेद असम्मत वानी । जिनहि न सूझ लाभ नहिं हानी ॥

नास्त्येव तस्मिन् तत्सुखि सुखित्वम् ॥ २४ ॥

तुम बिनु दुखी सुखी तुम तेही । तुम जानहु जिय जो जेहि केही ॥

॥ इति तृतीय अनुवाक ॥

---

२१. जैसा व्रज गोपियों का था ।
२२. यहां पर महात्म्य ज्ञान की विस्मृति अपवाद नहीं है ।
२३. महात्म्य ज्ञान के बिना जारों का सा ।
२४. उसी के सुख से सुखी होना उस में नहीं है ।

॥ इति तृतीय अनुवाक ॥

ओं पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्य्यः ॥१६॥

मम पद पंकज पूजा, तीसर भगति अमानं ॥

ओं कथादिष्विति गर्गः ॥ १७ ॥

दूसर रति मम कथा प्रसंगा ॥

ओं आत्मरत्यविरोधेन शाण्डिल्यः ॥१८॥

महादेव अवगुण भवन, विष्णु सकल गुणग्राम ।
जाकर मन रम जाहिसन, ताहि ताहि सन काम ॥

(१) नारदस्तदर्पिताखिलाचारता (२) तद्वि-स्मरणे व्याकुलतेति ॥ १९ ॥

(१) योग यज्ञ जप तप व्रत कीन्हा । प्रभु कह देइ भगति वर लीन्हा ॥
(२) मुनि अकुलाय उठा तब कैसे । विकल हीन मणिफणि वर जैसे ॥

अस्त्येवमेव ॥ २० ॥

हानि कि कछु एहि सम जग भाई । भजिय न रामहि नर तनु पाई ॥

---

१६. पूजा में अनुराग यह व्यास का मत है ।
१७. कथा आदि में अनुराग यह गर्ग का मत है ।
१८. आत्मरति के अविरोध से यह शाण्डिल्य का मत है ।
१९. उस में अखिल आचार का अर्पण करना, और उसके विस्मरण में परम व्याकुलता होना यह मत नारद का है ।
२०. और है भी ऐसा ही ।

दुस्सङ्गस्सर्वथैव त्याज्यः ॥ ४३ ॥

सुनहु असन्तन केर सुभाऊ। भूलिहु संगति करिय न काऊ ॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहि विधाता ॥

काम क्रोध मोह स्मृति भ्रंश बुद्धिनाश कारणत्वात् ॥ ४४ ॥

खल मंडली बसहु दिन राती। सखा धर्म निबहै केहि भांती ॥
तिन कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहिं घालै हरहाई ॥
काम क्रोध मत्सर अविवेका। इनहि हरख प्रद वर्षा एका ॥
सुनु मुनि कह पुराण श्रुति संता। मोह विपिन कह नारि बसंता ॥
बुधिबल शील सत्य सब मीना। बंशी सम तिय कहहिं प्रवीना ॥
कौ न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई ॥

तरङ्गायतायमे सङ्गात्समुद्रायन्ति ॥ ४५ ॥

विपति बीज बरखा ऋतु चेरी। भुंइ भइ कुमति केकई केरी ॥
पाइ कपट जल अङ्कुर जामा। बर दोउ दल फल दुख परिनामा ॥
अस कहि कुमति भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
दोउ बर कूल कठिन हठधारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली विपति वारिध अनुकूला ॥

---

४३. दुस्संग सब भांति से छोड़ने लायक है।

४४. काम, क्रोध, मोह, स्मृति, भ्रंश, बुद्धि नाश सर्व नाश का कारण होने से।

४५. तरंगायित रहने पर भी ये संग से समुद्र होजाते हैं।

महत्संगस्तुदुर्लभो (१) ऽगम्यो (२) ऽमोघश्च (३) ॥ ३९ ॥

(१) सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दण्डभरि एकौ बारा ॥
[२] करहि मोहवश द्रोह परावा। सन्त संग हरि कथा न भावा ॥
[३] सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई ॥

लभ्यतेऽपि तत्कृपया ॥ ४० ॥

बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता ॥

तस्मिन्तज्जने भेदाभावात् ॥ ४१ ॥

जानेसि सन्त अनन्त समाना ॥

तदेव साध्यताम् तदेव साध्यताम् ॥ ४२ ॥

[१] बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद, होय न दृढ अनुराग ॥
[२] मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जो पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ ॥

॥ इति पञ्चम अनुवाक ॥

---

३९. महत्संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।
४०. सो भी उसी की कृपा से प्राप्त होता है।
४१. उस से और उस के जन में भेद के न होने से।
४२. उसी का साधन करना चाहिये, उसी का साधन करना चाहिये।

॥ इति पञ्चम अनुवाक ॥

(१) तत्तुविषयत्यागात् (२) संगत्यागाच्च ॥ ३५ ॥

(१) सुमिरत रामहि तजहिं जन, तृण सम विषय विलास ।
रमा विलास राम अनुरागी । तजत वमन जिमि जन बड़भागी ॥
(२) श्रुति पुराण गावहिं अस नीती । खल सन कलह न भल सन प्रीती ॥
उदासीन नित रहिय गोसाईं । खल परिहरिय श्वान की नाईं ॥

अव्यावृत भजनात् ॥ ३६ ॥

सुमिरेसि भजेसि निरन्तर मोही ॥

लोकेऽपि (१) भगवद्गुणश्रवण (२) कीर्त्तनात् ॥ ३७ ॥

(१) सुनत फिरौं हरिगुण अनुवादा । अव्याहति गति शम्भु प्रसादा ॥
(२) चौथि भगति मम गुण गण, करइ कपट तजि गान ॥

मुख्यतस्तु [१] महत्कृपयैव (२) भगवत्कृपालेशाद्वा ॥ ३८ ॥

(१) अस विचारि जो कर सत संगा । राम भगति तेहि सुलभ विहंगा ॥
(२) जाकी कृपा लवलेश तें मतिमन्द तुलसीदास हूं ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूं ॥

---

३५. सो विषय त्याग तथा संग त्याग से ।
३६. निरन्तर भजन से ।
३७. लोक में भी भगवद् गुण के श्रवण और कीर्त्तन से ।
३८. मुख्यतः बड़ों की कृपा से अथवा भगवान् की कृपा के लवलेश से ।

न तेन (१) राजपरितोषः (२) क्षुधा शान्तिर्वा ॥ ३२ ॥

(१) यद्यपि सम नहिं राग न रोषू । गहइ न पाप पुण्य गुण दोषू ॥
तदपि करइ सम विषम बिहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥
(२) मन मोदक नहिं भूख बुताई ।

तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ॥ ३३ ॥

अस विचारि जे परम सयाने । मुकुति निरादर भगति लुभाने ॥

॥ इति चतुर्थानुवाक ॥

तस्यास्साधनानि गायन्त्याचार्य्याः ॥ ३४ ॥

भगति के साधन कहौं बखानी । सुगम पंथ मोहिं पावहिं प्रानी ॥

---

३२. न उससे पेट ही भरता है और न राजा का परितोष होता है ।

३३. इस लिये मुमुक्षुओं को चाहिये कि उसी को ग्रहण करैं ।

॥ इति चतुर्थ अनुवाक ॥

३४. उस (भक्ति) के साधन आचार्य लोग गान करते हैं ।

अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपं ॥ ५१ ॥

परम प्रीति की रीति तो न परै कही ॥

मूकास्वादनवत् ॥ ५२ ॥

किमि कवि कहै मूक जिमि स्वादू ॥

प्रकाश्यते क्वापि पात्रे ॥ ५३ ॥

गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥
राम भजन केते अधिकारी । जिन कह सतसंगति अति प्यारी ॥

[१] गुणरहितं [२] कामनारहितं [३] प्रतिक्षण वर्धमान [४] मविच्छिन्नं [५] सूक्ष्मतर [६] मनुभवरूपम् ॥ ५४ ॥

१. अब मैं जन्म शम्भु हितहारा । को गुण दोषहि करै विचारा ॥
२. जउद जन्म भरि सुरति विसारै । जाचत जल पवि पाहन डारै ॥
चातक रटनि रटे घटि जाई । बढ़े प्रीति सब भांति भलाई ॥
३. नित नव चरण उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहि मन लागा ॥
४. जो सुनि होय राम पद, प्रीति सदा अविछीन ।
५. देवि परन्तु भक्त रघुवर की । प्रीति प्रतीति जाय नहिं तरकी ॥
६. उर अनुभवति न कहि सक कोऊ ।

---

५१. प्रेम का सरूप कहा नहीं जा सक्ता ।
५२. गूंगे के स्वाद लेने की भांति ।
५३. कहीं २ पात्र को प्रकाश किया जाता है ।
५४. गुण रहित, कामना रहित, क्षण क्षण बढ़ने वाला, अटूट, सूक्ष्म और अनुभव रूप है ।

यः [१] कर्मफलं त्यजति [२] कर्माणि संन्यसति [३] ततो निर्द्वन्द्वो भवति ॥ ४८ ॥

१. हृदय न फल कछु अनुसंधाना। भूप विवेकी परम सुजाना ॥
२. हार्यो करि सब कर्म गुसाईं। सुखी न भयेउं अबहि की नांई ॥
३. द्वन्द्व विपति भ्रम फन्द विभंजय। हृद बसि राम काम मद गंजय ॥

वेदानपि सन्त्यजति केवलमविछिन्नानुरागं भजते ॥ ४९ ॥

धर्म नीति उपदेशिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम वचन चरण रति होई। कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई ॥

सतरति लोकान् सतरति लोकान् (२) सतारयति ॥ ५० ॥

वारक नाम लेत जग जेऊ। होत तरण तारण नर तेऊ ॥

॥ इति षष्ट अनुवाक ॥

---

४८. जो कर्मफल छोड़ता है, कर्मों को छोड़ता है, तब निर्द्वन्द्व होता है।

४९. वेदों को भी छोड़ देता है, केवल अटूट प्रेम को भजता है।

५०. वही तरता है, वही लोकों को तरता है, वही तारता है।

॥ इति षष्ट अनुवाक ॥

कस्तरति कस्तरति मायां (१) यः संगां-स्त्यजति (२) यो महानुभावं सेवते (३) यो निर्ममो भवति ॥ ४६ ॥

१. बैठे हृदय छांड़ि सब संगा।
२. राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित वैदेही॥
३. सब कर ममता ताग बटोरी। मम पद रजहिं बांधु बरडोरी॥

(१) यो विविक्तस्थानं सेवते (२) यो लोकबन्धमुन्मूलयति (३) निस्त्रैगुण्यो भवति (४) योगक्षेमं त्यजति ॥ ४७ ॥

१. यहि ते गुप्त रहौं बन माहीं। हरितजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥
२. सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥
३. कहिय तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुण त्यागी॥
४. मोर दास कहाय नर आशा। करइ तो कहहु कहां विश्वासा॥
यहि ते कहंइ संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥

---

४६. कौन माया तरता है, कौन माया तरता है, जो संग छोड़ता है, जो महानुभाव की सेवा करता है, जो निर्मम होता है।

४७. जो एकान्त स्थान सेवन करता है, जो लोक बन्धन उखाड़ डालता है, निस्त्रैगुण्य होता है, योग क्षेम छोड़ता है।

अभिमानं दम्भादिकं त्याज्यं ॥ ६४ ॥

दम्भ मान मद करहि न काऊ ॥

तदर्पिताखिलाचारः सन् काम [१] क्रोधा-[२] भिमानादिक [३] तस्मिन्नेव करणीयं ॥ ६५ ॥

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
अस रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम ॥
देहौं शाप कि मरिहौं जाई। जगत मोर उपहास कराई ॥
अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक सियपति पति मोरे ॥

त्रिरूप भंग पूर्वकं, [१] नित्य दास, [२] नित्य कान्ता, [३] भजनात्मकं वा प्रेमएवकार्यं प्रेमएवकार्यं ॥ ६६ ॥

१. प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी ॥
२. भानु पीठि सेइय उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी ॥
३. सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि
भजहु रामपद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि ॥

---

६४. अभिमान दम्भादिक छोड़ना।
६५. अखिलाचार उस में अर्पण करये हुए काम क्रोध अभिमानादि उसी पर करना।
६६. तीनों गुण को भंग करके नित्य कान्त, नित्य दास, भाव भजन व प्रेम करना प्रेम करना।

लोकहानौ चिन्ता न कार्य्या, निवेदितात्म लोकवेदशीलत्वात् ॥ ६१ ॥

जरौ सो सम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाय।
सन्मुख होत जो राम पद, करै न कोटि सहाय॥

न तद सिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव ॥ ६२ ॥

योग भोग महँ राखेउ गोई। राम विलोकत प्रगटेउ सोई॥

स्त्रीधन नास्तिक वैर चरित्रं न श्रवणीयं ॥ ६३ ॥

जिनकृत महामोह मद पाना। तिनके वचन करिय नहि काना॥

परद्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पामर पाप मय, देह धरे मनुजाद॥

---

६१. लोक हानि की चिन्ता न करना क्योंकि अपना लोक वेद सब उसी को अर्पण है।

६२. उसके बिना सिद्ध हुए लोक व्यवहार नहीं छोड़ना, किन्तु फल त्याग करना, उस का साधन करना, उसी पर करना।

६३. स्त्री, धन, नास्तिक और वैरी का चारित्र नहीं सुनना।

उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वापूर्वा श्रेयाय भवति ॥ ५७ ॥

सकल एक ते एक सचेता ॥

॥ इति सप्तम अनुवाक ॥

अन्यस्मात्सौलभ्यं भक्तौ ॥ ५८ ॥

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । योग न जप तप मख उपवासा ॥

प्रमाणस्यानपेक्षत्वात् स्वयम् प्रमाणत्वात् ॥५९॥

स्वयं प्रकाश रूप दिन राती । नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती ॥

[१] शान्ति रूपात् [२] परमानन्द रूपाच्च ॥ ६० ॥

ब्रह्मानन्द मगन कपि, सब के प्रभुपद प्रीति ।
जात न जाने दिवस निशि, गए मास षट बीति ॥

---

५७. उत्तर उत्तर से पूर्व पूर्व विशेष कल्याण के लिये है ।

॥ इति सप्तम अनुवाक ॥

५८. दूसरों से भक्ति में सुभीता ।

५९. प्रमाण की अपेक्षा नहीं, स्वयं प्रमाण होने से ।

६०. शान्ति रूप और परमानन्द रूप होने से ।

[१]तत्प्राप्य तदेवावलोकयति [२] तदेव शृणोति [३] तदेव भाषयति [४] तदेव चिन्तयति ॥ ५५ ॥

१. सातंवसन मोहिमय जग देखी। जहँ तहँ दीख धरे धनु बाणा ॥
२. जिन के श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरन्तर होंहि न पूरे। तिन के हृदय सदन तव रूरे ॥
३. कतहुँ मुनिन उपदेशहि ज्ञाना। कतहुँ राम गुण करहि बखाना ॥
४. राम चरण पंकज मन जासू। लुब्ध मधुप इव तजै न पासू ॥

गौणी त्रिधा गुण भेदात् आर्तादि भेदाद्वा ॥५६॥

राम भक्त जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
नाम जीह जपि जागहि योगी——प्रधान
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ
साधक नाम जपहि लय लाये ——गौणी
जपहि नाम जन आरत भारी

---

५५. जिसे पाकर उसी को देखता है, उसी को सुनता है, उसी को कहता है और उसी का मनन करता है।

५६. गुणों के भेद से वा आर्त, जिज्ञासु अर्थों के भेद से गौणी भक्ति तीनि प्रकार की—

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः ॥ ६७ ॥

वन्दौ परिजन सहित विदेहू । जाहि रामपद गूढ़ सनेहू ॥

(१) कण्ठावरोधरोमाञ्चाश्रुभिः परस्परमलयमानाः (२) पावयन्ति कुलानि पृथ्वीं च ॥ ६८ ॥

१. मम गुण गावत पुलक शरीरा । गद गद गिरा नयन बहै नीरा ॥
२. कहत सुनत हरखहि पुलकांही । ते सुकृती जन मुदित नहांही ॥
३. सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सु पुनीत ।
श्रीरघुवीर परायण, जहँ नर उपज विनीत ॥

[१] तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थाणि [२] सुकर्मी कर्माणि [३] सच्छास्त्री शास्त्राणि ॥ ६९ ॥

१. गंग अवनि थल तीन बड़ेरे । तेकिय साधु समाज घनेरे ॥
२. सोचव सुनव गुंनव तुम जोई । धर्म सार जग होइहि सोई ॥
३. तात तुम्हार विमल यश गाई । पाइह लोकहु वेद बड़ाई ॥

---

६७. छिपे भक्त मुख्य हैं ।

६८. कण्ठ रुंधा पुलक शरीर आप से ये कहते सुनते कुल और पृथ्वी को पवित्र करते हैं ।

६९. तीर्थों को तीर्थ, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सच्छास्त्र बना देवे हैं ।

तन्मयाः ॥ ७० ॥

रामाकार भये तिनके मन । मुक्त भए छूटे भव बन्धन ॥

(१) मोदन्ति पितरो (२) नृत्यन्ति देवताः (३) सनाथा चेयं भूर्भवति ॥ ७१ ॥

१. बन्धु वंश तैं कीन्ह उजागर । भजेहु राम करुणा सुखसागर ॥
पुत्रवती युवती जग सोई । रघुवर भक्त जासु सुत होई ॥
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लै पार ।
२. नभसराहि सुर बरषहिं फूला । धन्य धन्य धुनि मंगल मूला ॥
३. कहहुंसुभाव सत्यशिव साखी । भरत भूमि रह राउर राखी ॥

नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादि भेदः ॥ ७२ ॥

सोइ सर्वज्ञ गुणी सोई दाता । सोइ महि मंडित पंडित ज्ञाता ॥
धर्म परायण सोई कुल त्राता । रामचरण जाकर मन राता ॥
नीति निपुण सोइ परम सयाना । श्रुति सिद्धान्त नीक तेहि जाना ॥
सोई कवि कोविद सोइ रणधीरा । जो छल छांड़ि भजै रघुवीरा ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानौ एक भक्ति कर नाता ॥
जाति पाति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहै कैसे । विनु जल बारिद देखिय जैसे ॥

---

७०. चेतन्मय हैं ।

७१. पितर प्रसन्न होते हैं, देवता नाचते हैं और यह पृथ्वी सनाथ होती है ।

७२. उन लोगों में विद्या, रूप, कुल, धन, क्रिया आदि का भेद नहीं है ।

यंतस्तदीयाः ॥ ७३ ॥

राम कीन्ह आपन जबहीं ते । भयउ भुवन भूषन तबहीं ते ॥

॥ इति नवम अनुवाक ॥

वादो नावलम्ब्यः ॥ ७४ ॥

अस विचारि जे तज्ञ विरागी । रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥
मन समेत जेहि जान न बानी । तर्कि न सकहिं सकल अनुमानी ॥

बाहुल्यावकाशत्वादनियतत्वात् ॥ ७५ ॥

मूढ़ परम सिखदेउ न मानसि । उत्तरप्रत्युत्तर बहु आनसि ॥
सत्य वचन विश्वास न करई । वायस इव सबही सन डरई ॥

(१) भक्ति शास्त्राणि मननीयानि (२) तदुद्बोधककर्माण्यपि करणीयानि ॥ ७६ ॥

१. पावन पर्वत वेद पुराना । राम कथा रुचिराकर नाना ॥
२. भाव सहित खोजै जो प्रानी । पाव भक्ति मणि सब सुख खानी ॥
तर्पण होम करहिं विधि नाना । विप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना ॥
सबकर मांगहि एक फल, राम चरण रति होय ॥

---

७३. क्योंकि ये उनके हैं ।

॥ इति नवम अनुवाक ॥

७४. वाद का अवलम्बन नहीं करना ।

७५. बहुत अवकाश होने से और अनियत होने से ।

७६. भक्ति शास्त्र का मनन करना और उस के उद्बोधक कर्मों को करना ।

(१) सुख दुःख लाभेच्छादि त्यक्ते (४) काले प्रतीक्ष्यमाणे (३) क्षणार्धमपि व्यर्थं ननेयं ॥ ७७ ॥

१. सुख हरखहि जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ समधीर धरहिं मनमाहीं ॥
योग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा ॥
काल कर्म वश होहि गुशांई। बरबस राति दिवस की नाई ॥
२. चितवत पंथ रहेउ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥
३. समहि सुमिरिय गाइय रामहि। संतत सुनिय राम गुण ग्रामहि ॥

अहिंसासत्यशौचदयास्तिक्यादि चारित्र्याणि पालनीयानि ॥ ७८ ॥

समदम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूं नहिं बोलहिं ॥

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः ॥ ७९ ॥

अस विचारि मतिधीर, तजि कुतर्क संशय सकल।
भजिय राम रणधीर, करुणाकर सुंदर सुखद ॥

---

७७. सुख दुख लाभ इच्छादि को छोड़कर काल की प्रतीक्षा करता हुआ आधे क्षण को भी व्यर्थ न जाने दे।

७८. अहिंसा सत्य शौच दया आस्तिक्यादि चरित्रों को पालना।

७९. सर्वदा सर्व भाव से निश्चिन्त होकर भगवान ही का भजन करना।

संकीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति भक्तान् ॥ ८० ॥

सहे सुरन्ह बहु काल विषादू । नरहरि प्रगट कीन्ह प्रह्लादू ॥
प्रथक प्रथक तिन कीन्ह प्रशंसा । भये प्रसन्न चन्द्र अवतंसा ॥
स्तुति सुरन कीन्ह अति हेतू । प्रगटेउ तुरत वारिचरकेतू ॥

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी, भक्तिरेव गरीयसी ॥ ८१ ॥

चहुं युग तीन काल तिहु लोका । भयउ नाम जपि जीव विशोका ॥
सो स्वतन्त्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥

---

८०. वह कीर्त्तन किये जाने से शीघ्र ही प्रगट होकर भक्तों को अनुभव कराता है ।

८१. तीनि सत्य की भक्ति ही बड़ी है, भक्ति ही बड़ी है ।

(१) गुण माहात्म्यासक्ति (२) रूपासक्ति (३) पूजासक्ति (४) स्मरणासक्ति (५) दासासक्ति (६) सख्यासक्ति (७) कान्तासक्ति (८) वात्सल्यासक्ति (९) आत्म निवेदनासक्ति (१०) तन्मयासक्ति (११) परमविरहासक्ति रूपा एकधाप्येकादशधा भवति ॥ ८२ ॥

१. अस सुभाव कहुं सुनौ न देखहु । केहि खगेश रघुपति सम लेखहु ॥
राम अमित गुण सागर, थाह कि पावै कोय ।
सन्तन सन जस कछु सुनेहु, तुमहि सुनायउ सोय ॥

२. लोचन चातक जिन करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सरवारी । रूप बिंधु जल होंइ सुखारी ॥

३. नित पूजत प्रभु पांवरी, प्रीति न हृदय समाति ।
मांगि मांगि आयसु करत, राज काज बहु भांति ॥

---

८२. गुण माहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति दासासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, परमविरहासक्ति रूप

४. सुमिरत हरिहि शाप गति बाधी । सहज विमल मन लाग समाधी ॥
५. सेवक हम स्वामी सियनाहू ।
६. एक बानि करुणानिधान की । सो प्रिय जाके गति न आन की ॥
७. कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखी ।
८. सहित विदेह विलोकहिरानी । शिशु सम प्रीति न जाय बखानी ॥
९. मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता । जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता ॥
कबहुंक फिर पाछे पुनि जाई । कबहुंक नृत्य करै गुन गाई ॥
१०. रामाकार भए तिनके मन ।
११. ताते मुनिहरि लीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति वर लयऊ ॥

(१) इत्येवं वदन्ति जनजल्प निर्भयाः (२) एकमताः कुमार व्यासशुकशाण्डिल्य-गर्गविष्णुकौण्डिन्यशेषोद्धवारुणिबलिहनुमद्विभीषणादयो भक्ताचार्य्याः ॥ ८३ ॥

१. जानउ राम कुटिल करि मोंही । लोक कहै गुरु साहेब द्रोही ॥
मोरे शरण राम की पनहीं । राम सु स्वामि दोष सब जनहीं ॥

से एक होकर भी ११ प्रकार की हो जायगी ।

८३. लोगों के जल्प से निर्भय एकमत होकर कुमार, व्यास,

२. सबकर मत खगनायक एहा। करिय राम पद पंकज-नेहा ॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। वाल्मीक विज्ञान विशारद ॥
शुक सनकादि शेष अरु सारद। बरणि पवनसुत कीरति नीकी ॥
व्यास आदि कवि वर्य्य बखानी। अरु घटसम्भव मुनि विज्ञानी ॥
कलिमल हरणि विषय रस फीकी। सुभग सिंगार भक्ति युवतीकी ॥
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिनहिं कथा सुनि लागिहि फीकी ॥
कवि न रसिक न राम पद नेहू। तिनकहं सुखद हास रस एहू ॥

पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोय।
भक्ति भाव भज कपट तज, मोहि परम हिय सोय ॥

य इदं नारद प्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसते श्रद्दधते सम भवति सप्रेष्ठं लभते सप्रेष्ठं लभत इति ॥ ८४ ॥

१. रचि महेश निज मानस राखा। पाइ सु समय शिवा सन भाखा ॥
२. त्रैलोक्य पावन सुयश सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

॥ इति दशम अनुवाक ॥

शुक, शाण्डिल्य गर्ग, कौण्डिन्य, शेष, उद्धव, वारुणि, बलि, हनुमान, विभीषणादि भक्ताचार्य ऐसा ही कहते हैं।

८४. जो इस नारद के कहे हुए शिवानुशासन पर विश्वास करता है, श्रद्धा करता है, वह प्यारे को पाता है, अवश्य पाता है।

॥ इति दशम अनुवाक ॥

✻ छप्पय ✻

शंकर तरु फुलि फर्‌यो भक्ति गुणमय कपासफर।
नारद परम प्रवीण युक्ति करि रच्यो सूत्र वर॥
सब शास्त्रन को सार सर्व सम्मत रामायण।
तुलसी तुलसी बाग कियो हरि भगति परायण॥
मञ्जु मञ्जरी विमल दल,
लहि विजयानंद हर्षि हिय।
गूंथि माल तेहि सूत्र पर,
रामचन्द्र पदकंज दिय।"